ISSN: 2395-7852

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management

Volume 11, Issue 4, July - August 2024

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 7.583

+91 9940572462 +91 9940572462 ijarasem@gmail.com www.ijarasem.com

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 7.583 | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 11, Issue 4, July-August 2024 |

भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका

डॉ. दयाचन्द

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

सार

भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का मूल्यांकन करना अत्यंत कठिन कार्य है. कई लोग जाति को राजनीति का कैंसर मानते हैं. जाति प्रथा को राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधक माना जाता है. इससे व्यक्तियों में पृथकतावाद की भावना आती है. राष्ट्रीय हितों और सामाजिक मुद्दों की जगह जातिगत हितों को अधिक महत्त्व देने लगते हैं. देश भर में जातिगत राजनीति ने अपना दबदबा बनाए रखा है.

बिहार चुनाव नज़दीक है. सभी राजनीति दल अपनी-अपनी जाति को परखना शुरू कर चुके हैं. जातिगत राजनीति पर जयप्रकाश नारायण ने कहा है,

"जाति भारत में अत्यधिक महत्वपूर्ण दल है."

भारतीय स्वतंत्रता के बाद से ही देश में राजनीतिक आधुनिकीकरण प्रारंभ हो गया. यह धारणा विकसित हुई कि पश्चिमी राजनीतिक संस्थाएं और लोकतांत्रिक मूल्यों को अपनाने के बाद राजनीति में जातिवाद का अंत हो जाएगा. इसके उटल जातिगत का प्रभाव बढ़ता ही गया.

परिचय

हमारे राजनीतिज्ञ एक अजीब असमंजस की स्थिति में हैं. जहां एक ओर वे जातिगत भेदभाव मिटाने की बात करते हैं, वहीं दूसरी ओर जाति के आधार पर वोट बटोरने की कला में निपुणता हासिल है. देश के किसी भी राज्य की राजनीति जातिगत राजनीति से अछूती नहीं है.[1,2,3]

जातिगत नेताओं की शुरुआत 1989 में मंडल कमीशन के वक़्त होने लगी. 1991 के बाद जो बड़े नेता जैसे लालूप्रसाद यादव, नीतीश कुमार, मायावती, मुलायम सिंह, शिवराज सिंह चौहान, शरद यादव आए, वे जाति आधारित राजनीति के प्रतिनिधि बन गए. ऐसा भी कहा जाता है कि जितने भी निम्न जाति के नेताओं का जन्म हुआ, यह मंडल कमीशन की ही देन है.

प्रो. रजनी कोठारी की लिखी ' कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स' में भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का विस्तृत विश्लेषण है. इस किताब के मुताबिक़ राजनीति में जाति का आना उचित है. इससे प्रतिस्पर्धा बढ़ी है. इससे पहले ऊंची जाति यानी ब्रह्मणों का दबदबा रहता था.

रजनी कोठारी का मत है कि अक्सर यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या भारत में जाति प्रथा ख़त्म हो रही है? इस सवाल के पीछे यह धारण है कि मानो जाति और राजनीति परस्पर विरोधी संस्था हैं. ज़्यादा सही सवाल यह होगा कि जाति-प्रथा पर राजनीति का क्या प्रभाव पड़ रहा है और जाति वाले समाज में राजनीति क्या रूप ले रही है?

जो लोग राजनीति में जातिवाद की शिकायत करते हैं, वे न राजनीति के प्रकृत स्वरूप को ठीक से समझ पाए हैं और न जाति के स्वरूप को. भारत की जनता जातियों के आधार पर संगठित है. इसलिए न चाहते हुए भी राजनीति को जाति संस्था का उपयोग करना ही पड़ेगा. यह कहा जा सकता है कि राजनीति में जातिवाद का मतलब जाति का राजनीतिकरण है.

जाति को अपने दायरे में खींचकर राजनीति उसे अपने काम में लाने का प्रयत्न करती है. दूसरी ओर राजनीति द्वारा जाति या बिरादरी को देश की व्यवस्था में भाग लेने का मौक़ा मिलता है. राजनीतिक नेता सत्ता प्राप्त करने के लिए जातीय संगठन का उपयोग करते हैं और जातियों के रूप में उनको बना-बनाया संगठन मिल जाता है, जिससे राजनीतिक संगठन में आसानी होती है.

रजनी कोठारी के उलट सोच रखने वाले हेरल्ड गोल्ड का कहना है कि राजनीति का आधार होने की बजाय जाति उसको प्रभावित करने वाला एक तत्व है.

माइकल ब्रेचर के मुताबिक़ अखिल भारतीय राजनीति की अपेक्षा राज्य स्तर की राजनीति पर जातिवाद का अधिक प्रभाव है. बिहार, केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, हरियाणा, राजस्थान और महाराष्ट्र राज्यों की राजनीति का अध्ययन तो बिना जातिगत गणित के विश्लेषण के कर ही नहीं सकते.

बिहार की राजनीति में राजपूत, ब्राह्मण, कायस्थ और जनजाति प्रमुख जातियां हैं. केरल में साम्यवादियों की सफलता का राज यही है कि उन्होंने 'इजावाहा' जाति को अपने पीछे संगठित कर लिया. आन्ध्र प्रदेश की राजनीति में काम्मा और रेड्डी जातियों का संघर्ष की कहानी है. काम्मओं ने साम्यवादियों का समर्थन किया तो रेड्डी जाति ने कांग्रेस का.[4,5,6]

महाराष्ट्र की राजनीति में मराठों, ब्रह्मणों और महरों में प्रतिस्पर्धा रही है. गुजरात की बात करें तो दो जातियां-पाटीदार और क्षत्रिय का प्रभाव है.

डी.आर गाडगिल कहते हैं "क्षेत्रीय दबावों से कहीं ज़्यादा ख़तरनाक बात यह है कि वर्तमान समय में जाति व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बाधने में बाधक सिद्ध हुई है."

प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम.एन.श्रीनिवास का स्पष्ट कहना है कि परंपरावादी जाति व्यवस्था ने प्रगतिशील और आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को इस तरह प्रभावित किया है कि ये राजनीतिक संस्थाएं अपने मूलरूप में कार्य करने में समर्थ नहीं रही हैं.

दूसरी तरफ़ अमेरिकी लेखक रूडोल्फ़ का कहना है कि जाति व्यवस्था ने जातियों के राजनीतिकरण में सहयोग देकर परंपरावादी व्यवस्था को आधुनिकता में ढालने के सांचे का कार्य किया है. वे लिखते हैं,

"अपने परिवर्तिति रूप में जाति व्यवस्था ने भारत में कृषक समाज में प्रतिनिधिक लोकतंत्र की सफलता तथा भारतीयों की आपसी दूरी को कम करके, उन्हें अधिक समान बनाकर समानता के विकास में सहायता दी है."

चाहे जाति आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधक न हो, लेकिन राजनीति में जाति का हस्तक्षेप लोकतंत्र की धारणा के प्रतिकूल है. जातिवाद देश, समाज और राजनीति के लिए बाधक है. विविधता की सीमाएं होती हैं.

इस देश में इतनी जातियां, उपजातियां और सहजातियां पैदा हो गई हैं कि वे एक-दूसरे से अलग रहने में ही अपने-अपने अस्तित्व की रक्षा समझती हैं. यह अलग रहने की सोच ही राष्ट्रीय एकता के लिए घातक है.

विचार-विमर्श

भारत में इस्लाम-मत के व्यापक प्रसार में, तत्कालीन जाति-व्यवस्था एवं उससे उत्पन्न हो रहे असंतोष, आक्रोश ने बहुत बड़ा योगदान दिया। यह असंतोष पनप रहा था और हिन्दू धर्म एवं समाज के अंदर पनप रहे, अनेक पंथों एवं सम्प्रदायों के माध्यम से प्रगट भी हो रहा था।

जाति-प्रथा के कारण, जो समाज की बाहरी परिधि में थे, वे अपने को अधिक सहज नहीं अनुभव कर रहे थे और वही लोग, अपनी स्थिति से असंतुष्ट वह उसमें बदलाव के लिए आतुर थे।

ऐसे लोग, इस्लाम के समानता और भाईचारे के नारों की ओर, पहले आकर्षित हुए और उन्होंने बड़ी संख्या में धर्म-परिवर्तन कर इस्लाम कबूल किया।

यह अलग बात है कि अरब के मुसलमान, आज भी उन्हें, अपनी बराबरी का, शायद, नहीं समझते हैं और जाति-प्रथा, ऊंच-नीच का भेद-भाव, आज भी, वहां है।
भारतीय राजनीति में जातिवाद आज का सबसे बड़ा सत्य है और कोई भी पार्टी ईसी जातिवादी राजनीति के दलदल से बाहर नहीं है ।[7,8,9]

चुनावों में उम्मीदवार चुनते वक्त हर पार्टी जातिए समीकरण ध्यान रखे जाते हैं । सत्ता में आने पर हर पार्टी मंत्रीमंडल बनाते वक्त फिर जातिवादी समीकरणों के आगे ही नतमस्तक होती है ।

तथाकथित समाज कल्याण की लगभग सभी योजनाएँ, आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार बनाए जाने कि बजाय, जातिवादी समीकरणों के अनुसार ही बनाईं जाती हैं ।

शिक्षा, सरकारी नौकरियों और राजनीतिक, आरक्षण आज भी आज़ादी के 77 साल बाद भी जाति आधारित है बजाय आर्थिक मापदंडों के ।

हमारे नेता जातिवाद खत्म करने की बातें ज़रूर करते हैं परन्तु काम जातिवाद को और मज़बूत करने के ही करते हैं ।
मेरा मानना है कि झारखण्ड में जातिगत भावनाएं बिहार और उत्तर प्रदेश से अवश्य ही कुछ कम अवश्य हैं परंतु जातिवाद समस्त भारत की तरह यहां भी व्याप्त है। झारखण्ड की ही 2003 या 2004 की घटना बता रहा हूँ। मेरी पोस्टिंग ग्रामीण क्षेत्र में थी। किराए के मकान में रहता था और सप्ताहांत पर अपने घर रांची लौटा करता था। सुबह चाय पीने घर के नीचे एक झोपड़ीनुमा दूकान पर बैठता था तो आस पास के ग्रामीण भी आ जाते और घंटो बातें होती।

मेरे ही प्रखंड में एक अन्य पशुचिकित्सक भी थे जो रांची से आना जाना करते थे। उनको कम ही लोग पहचानते थे। एक बार किसी कारण से उनको मेरे साथ रात में रुकना पड़ा। सुबह हम दोनों चाय पीने निकले तो अन्य लोग भी साथ बैठ गए।

एक प्रमुख राजनितिक दल के प्रमुख भी साथ बैठे थे। उन्होंने मेरे दोस्त के बारे में पूछा कि ये कौन हैं, इन्हें मैं पहली बार देख रहा हूँ।

मैंने उन्हें बताया कि ये भी इसी प्रखंड में पोस्टेड हैं और किसी काम से आज मेरे साथ रुक गए हैं।

अब वो मेरे मित्र के तरफ मुखातिब हुए और पुछा, ' डॉक्टर साहब आपका नाम क्या है?'

'गौतम' मेरे मित्र ने बताया।

उन्हें तसल्ली नहीं हुई, ' पूरा नाम डॉक्टर साहब?'

मेरा मित्र समझ गया कि वो क्या जानना चाहते हैं। [10,11,12]

परिणाम

यह अवश्य है कि जातीय भेदभाव पहले से कम हुआ है पर अभी भी यह जिस स्तर पर है उसको किसी भी हालत में नगण्य नहीं कहा जा सकता है.

ओलम्पिक अभी समाप्त ही हुए हैं, इसलिए उदाहरण के तौर पर खेल के मैदान से ही कुछ घटनाएं देख लेते हैं...

- चंद दिन पहले सुरेश रैना खुद को ब्राह्मण बता रहे थे जो कि बिना किसी कॉंटेक्स्ट के एकदम बेतुकी बात थी. पर उस पर क्या गज़ब के तर्क वितर्क हुए.
- टोक्यो ओलंपिक में भारतीय महिला हॉकी टीम के हारने के बाद दो लोग स्टार प्लेयर वंदना के घर जाकर गाली दे आए. उनका मानना था कि टीम में ज्यादा दलित होने के कारण ही टीम मैच हारी थी.
- कुछ साल पहले जब अपने जूते पर रवीन्द्र जडेजा 'राजपूत' लिखकर घूम रहा था तब वो बात हंसी में उड़ाई गई.
- वसीम जाफ़र पर कुछ फ़ालतू लोगों ने 'धर्म परिवर्तन' का आरोप लगाया और उत्तराखंड क्रिकेट एसोसिएशन से हटवा दिया था. साबित वहाँ कुछ भी नहीं हुआ था.
- पुरुष हॉकी में जीतने के बाद 'सिख खिलाड़ियों' ने गोल मारे, ऐसी बातें सोशल मीडिया पर रही हैं. होनी भी चाहिए न ? हर किसी जाति, धर्म और समुदाय को अपनी पहचान के लिए लड़ना पड़ेगा अब.

अब कुछ घटनाओं के माध्यम से वह लिख रहा हूं जो मैंने उत्तर प्रदेश के एक सवर्ण ब्राह्मण समाज में रहते हुए देखा और समझा है.

- यदि कोई विधानसभा, लोकसभा या सरपंच सीट अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित है तो ज्यादातर सवर्ण वर्ग में उसको 'आरक्षित सीट' या 'दलित सीट' की जगह 'अछूत सीट' कहकर सम्बोधित किया जाता है. मैंने खुद अपने रिश्तेदारों और दोस्तों को यह शब्द इस्तेमाल करते देखा है.
- मेरे होमटाउन में जिस मोहल्ले में हमारा घर है, उसका नाम 'बमनपुरी' है अर्थात ब्राह्मणों का नगर, और हमारी कॉलोनी का नाम 'शर्मा कॉलोनी' . बड़ा मोहल्ला है तो उसमें अन्य जातियों के लोग भी रहते हैं. मेरी दादी कई बार यह बात कहती हैं "अब काहे का बमनपुरी, देखो फलाने गुप्ता, फलाने कायस्थ और फलानी गली में मुसलमानों के घर हैं"
- यदि किसी शहर में काफी समय से रह रहे हैं तो आप उस शहर के किस इलाके में किस जाति के लोग बाहुल्य में हैं इस बात से वाकिफ होंगे. छोटे कस्बों में तो कई नाम (सरनेम की भी ज़रूरत नहीं) और पता ही व्यक्ति की जाति बताने के लिए काफ़ी होता है.
- अभी भी ग्रामीण और क़स्बाई इलाकों में सवर्णों के घर में 'नीची' जाति के लोगों के लिए अलग बर्तन रखे जाते हैं. खाने पीने की दुकानों में कुछ अत्यधिक जातिवादी सवर्ण डिस्पोजल गिलास आदि में चाय कॉफ़ी पीना पसंद करते हैं जबकि कुछ जातिवादी दुकानदार तक असवर्णों को डिस्पोजबल बर्तन में चाय देते हैं.

- मेरा भाई जब 11वीं में पढ़ता था तो अचानक किसी काम से वह अपने दोस्त के साथ नानी के यहां गया. दोस्त 'कुशवाहा' था. मामी ने नाश्ता लगा दिया और दोनों दोस्त खाने लगे. क्योंकि हमारे घर में कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है इसलिए भाई को कुछ महसूस नहीं हुआ. तभी नानी आकर हाल चाल पूछने लगीं. भाई के दोस्त से बोलीं - "लल्ला तुम कौन बिरादर?" दोस्त पर घड़ो पानी पड़ गया. उसने बिरादरी बताई. बाद में शायद वह प्लेट अलग कर दी गई होगी.[13,14,15]
- जब मैं 5वीं में पढ़ता था तो होली के अगले दिन मेरा दोस्त प्रशांत गुप्ता घर से एक नई बात सीखकर आया और मुझसे बोला "आज सभी टीचरों के पैर छूने चाहिए, क्योंकि सभी बड़े लोगों के पैर हमने घर में छुए हैं" यह बात मुझको जंची. हम सभी टीचरों के पैर छूने लगे. एक पीरियड में एक जातिवादी शिक्षिका आईं. जैसे ही हम पैर छूने आगे बढ़े, उन्होंने मुझे रोक दिया. बोलीं, "हम ब्राह्मणों से पैर नहीं छुवाते, पाप लगता है" मैं उनका शिष्य न बन सका, ब्राह्मण बन गया. वापस आकर मम्मी को बताया कि हमने सब शिक्षकों के पैर छुए, उन्होंने भी सर पीट लिया. आज भी गांव में 50 साल के भी दलित 20 साल के ब्राह्मण लड़के को राम राम 'पंडित जी' बोलते देखे हैं. क्या मजाल है कि लड़का पहले राम राम बोल दे या वह व्यक्ति नाम लेकर बात कर ले, बिना 'जी' लगाए.
- हालांकि कई लोग जातिवाद को खाने की प्लेट से हटा चुके हैं पर शादी-विवाह आदि में यह सभी धर्मों में और खासतौर से हिन्दू धर्म में ज़ोर शोर से विद्यमान है.
- मैंने एक बार अपने एक मित्र की जाति गलत बताई है. किसी फंक्शन में उसने मेरे घर में खाना बनाया था, वह खाना अच्छा बनाता था. हॉस्टल में हम एक थाली में खाते थे, इसलिए जाति वाली बात सोचने की ज़रूरत ही नहीं समझी. घर में अखंड रामायण थी और वह दोस्त भी आया हुआ था. वह मचल गया कि भरवा भिंडी वह बनाएगा. मुझे पता था वह शानदार बनाएगा. सर्व करते समय एक प्रकांड पंडित रिश्तेदार ने उसका सरनेम पूछ लिया, तब मुझे तुरत बुद्धि का इस्तेमाल करना पड़ा. वह 'भारती' बोले उससे पहले ही मैंने 'गुप्ता' बोल दिया और उसकी तरफ याचना भरी नज़रों से देखा. वह पलक झपकते ही समझ गया कि बवाल न हो इसलिए मैंने ऐसा किया है. अभी भी मुझे चिढ़ाता है कि जनेऊधारी पंडित जी को तुमने दलित के हाथ की रोटी खिलाई वह भी धोखे से. जातिभेद के विरोधी हम जैसे ब्राह्मणों ने जीवन में एक बार तो ऐसा किया ही होगा.
- कई जगह ऊंची और नीची जातियों के लिए अभी तक अलग अलग श्मशान हैं.
- मेरे ही परिवार में मेरी दादी ने खाने के मेन्यू की जातिगत केटेगरी बना रखी है. कुछ जातियों को वह 'लुटिया वाली जाति' मानती हैं मतलब उन जातियों के घर का 'पक्का खाना' खा सकती हैं. पक्का खाना जैसे पूड़ी, कचौड़ी, मिष्ठान्न आदि. कच्चा खाना जैसे दाल, चावल, रोटी आदि तो किसी गैर ब्राह्मण के घर भी नहीं खाती हैं. इतनी जातिवादी हैं. मेरी रिश्तेदारी में दादी की पीढ़ी के लगभग सब और मेरे पापा की पीढ़ी के आधे लोग इस नियम को आज भी इस नियम को मानते हैं. वह लोग इस नियम को न मानने वालों को 'भ्रष्ट ब्राह्मण' भी कहते हैं.

यह सारे बिन्दु मैंने वह लिखे हैं जो सामान्य जन-जीवन में सहजता से लिए जाते हैं. अत्यधिक पैशाचिक कृत्य जैसे घोड़ी चढ़ने पर दूल्हे की पिटाई, हरिजन बस्ती में आग लगाना, दलित लड़कियों से बलात्कार व हत्या आदि का ज़िक्र मैंने नहीं किया है क्योंकि कुछ अतिवादियों के सिवा सामान्य जनमानस तो इन घटनाओं के विरोध में ही है.

ईसमें कोई संदेह नहीं है कि भारतीय राजनीति जातिवाद और धर्म पर चलती है । जब प्रधानमंत्री अपनी रैलियों में, संसद में कई बार घोषणा कर चुके हों कि वो पिछड़ी जाति से आते हैं, जब केंद्र सरकार को बड़े बड़े होर्डिंग लगवा कर घोषणा करनी पड़ती हो कि केन्द्रीय मंत्रिमंडल में कितने मंत्री पिछड़ी जातियों के हैं तो निश्चित ही जातिवाद भारतीय राजनीति पर हावी है ।

जब नितीश कुमार बिहार में जाति जनगणना का प्रस्ताव विधानसभा में पेश करें और सारे दल, भाजपा जो उस समय वहाँ पर विपक्ष में थी, के समेत, उस प्रस्ताव के पक्ष में वोट करें तो कोई संदेह नहीं है कि जातिवाद भारतीय राजनीति को प्रभावित करता है ।[13,14]

सारे राजनीतिक दल, किसी भी चुनाव में अपना उम्मीदवार घोषित करने से पहले उस क्षेत्र के जातीय समीकरण जाँचते हों तो निश्चित है कि जातिवाद राजनीति को प्रभावित करता है ।

कुछ महीने पहले तक भाजपा के नेता घोषणा कर रहे थे नितीश कुमार के लिए भाजपा के सारे दरवाज़े बंद हैं परन्तु जैसे ही चुनाव नज़दीक आये, नितीश कुमार की शर्तों पर, उन्हें अपने साथ लाना पड़ा, वजह बिहार के जाति समीकरण ।

जानकार यह भी कहते हैं कि बसपा को INDIA गठबंधन में जाने से रोका गया क्योंकि उस दल के साथ दलित वोट भी INDIA गठबंधन को जाने का अंदेशा था । यह सब जातिवाद के कारण ही है ।

दिलचस्प बात यह है कि 400 सीट का दावा करने वाले NDA संगठन के नेता जातिवाद से अप्रभावित रहने का दिखावा करने को भी तैयार नहीं हैं ।

अगर आप सवर्ण हैं और आप जातिवाद के विरोधी हैं क्योंकि आपने जातिवाद का बुरा चेहरा देखा है तो यकीन मानिए आपने जातिवाद को एक फीसद भी नहीं देखा.

गाँव में अनुसूचित जातियों की बस्ती अलग होती है.(अगर आप ऐसा गांव जानते हैं जहाँ ऐसा नहीं है, कृपया मुझे अवगत कराएं मैं जरूर देखना चाहूंगा ऐसा गांव)

सब लगभग खेतों पर ही निर्भर होते हैं. 'बदकिस्मती' से अगर किसी SC की जमीन किसी सवर्ण(जिसमें ओबीसी भी सम्मिलित है) से लगती है तो उसकी जमीन पर एक दो हाथ तक सवर्ण का ही कब्जा होता है.

सवर्ण अनुसूचित जातियों की बस्ती से बाइक, वाहन दौड़ा कर ले जाते हैं. और SC उनकी गलियों से दबकर निकलते हैं.

अगर पैदल गली से निकलना हुआ तो बेचारे प्रणाम भी करते हैं. बेचारे इसलिए कहा है क्योंकि उनका स्वाभिमान मार दिया गया है.

स्वाभिमान बचा कहाँ जो अपना 'नाम' भी सवर्णों के डर से बदलना पड़े.(नाम में 'सिंह' जोड़ने पर दलित परिवार को धमकी)

बीबीसी की इस न्यूज का अंश

सेंधाभाई ने बीबीसी से कहा, "हमने अपने नाम के साथ सिंह उपनाम लगाया है इसलिए हमारा जीना हराम कर दिया गया है. हमको रोज़ धमकियां मिल रही हैं. हमें शादी की ख़रीददारी करने जाते हुए भी डर लग रहा है. हमारी बहन-बेटियों को घर से उठा लेने की धमकियां दी जा रही हैं."

सेंधाभाई के बड़े बेटे केसरभाई कहते हैं, ''हमें मिली धमकी की बात समाज में चारों तरफ़ फैल चुकी है. अब हमारे घर शादी में कौन आएगा ये भी एक सवाल है. हमें डर है कि शादी के दिन कुछ हंगामा होगा तो बहन-बेटियां सलामत रहेंगी या नहीं.''
खुशियाँ मनाने का एकाधिकार केवल सवर्णों को प्राप्त है.

अगर अनुसूचित जातियों की बस्ती सवर्णों की बस्ती से अधिक दूर नहीं है और यदि उस बस्ती में जाने का रास्ता सवर्णों की बस्ती से होकर जाता है. तो आपको उस गाँव में बारात गाजे बाजे और घोड़ी के साथ ले जाने की बात दिमाग में लानी भी नहीं चाहिए.

और बस्ती अगर सवर्णों से दूर है फिर भी आपको डरना चाहिए. (मेरा 'आप' से मतलब किसी SC से है, आप सवर्ण हैं तो निश्चिन्त रहिए)

आप सवर्ण हैं तो आपको जातिवाद एक फीसद भी नहीं पता. क्योंकि आपने शादी से पहले अपने घरवालों को दूसरे परिवार जिसमे शादी होने जा रही है से ये पूछते हुए नहीं सुना कि "क्या तुम्हारे गांव में बारात डीजे से निकाली जा सकती है?"

सभी रिश्तेदारों के सामने दूल्हे को पीटकर घोड़ी से उतार देने पर महसूस होने वाला दर्द आपने कभी सोचने की कोशिश भी नहीं की. (पूछिए अपने आप से आपने सोचा है क्या)

बारातें पुलिस जाब्ते के साथ जाती हैं.(जो सक्षम होते हैं उनकी, नहीं तो बेचारे यह सोच कर सब्र कर लेते हैं कि क्या होता है बारात से)

[यहां पहली बार घोड़ी पर बैठा दलित दूल्हा, पुलिस साये में निकली बारात, देखते रह गए दबंग] खबर 20/4/2019

2019 में SC के घोड़ी पर बैठने की खबर आपने पढ़ी थी क्या? पढ़कर आपने क्या सोचा? क्या आपने उन गाँवो के बारे में सोचा है जहाँ अभी तक एकबार भी ऐसा नहीं हुआ?

क्या आप एक सामान्य SC की बारात का अंदाजा लगा सकते हैं, जब अनुसूचित जाति के 'पुलिसवाले' की बारात पर सवर्ण हमला करने से न झिझकते हों?

[राजस्थान: दलित पुलिसवाले की बारात पर हमला, पीड़ित का आरोप- राजपूतों ने धारदार हथियार से लोगों पर किए वार खबर फरवरी 2019]

जो दल या व्यक्ति जातिवाद समाप्त करने की ओर कदम न बढाये तो वे सभी जातिवाद को बढावा देने वाले ही कहे जायेंगे, भले ही वे मुंह से कुछ न बोले। यह एक प्रकार की जातिवाद बढाने की मूक-स्वीकृति कहलाती है। क्योंकि जातिवाद समाप्त करने की चाह

होती तो यह कब का समाप्त हो चुका होता? इसलिए दूसरों पर उंगली उठाने से बेहतर है, अपने अंदर भी झांक कर देख लेना चाहिए।

इसी जातिवाद का परिणाम रहा है जो देश धर्म-परिवर्तन के साथ-साथ गुलामी तक झेल चुका है। यहां तककि बंटवारे का कारण भी बन चुका है। इसका प्रमुख कारण लोगों में एकता का अभाव रहा है।

आरक्षण इस जातिवाद को दूर करने का एक मार्ग अवश्य है। इसे जाति आधारित रखा गया था। लेकिन लोग इसे समाप्त करने के तो इच्छुक दिखाई देते है, परंतु देश को बरबाद करने वाली जातिवादिता को समाप्त करने का कोई इच्छुक दिखाई नहीं देता है। सोचने वाली बात है कि जब जातियां ही नहीं रहेंगी तो जाति आधारित आरक्षण किसके लिए होगा?

आरक्षण से इतना लाभ अवश्य हुआ है कि लोगों के भेदभाव में कमी आई है तथा वैवाहिक संबंध योग्यता के आधार पर होने लगे हैं। इससे अंतर्जातीय वैवाहिक सम्बन्धों को भी बढावा मिलने लगा है।

निष्कर्ष

सबसे पहले आरक्षण के कारण जातीवाद बढा. वि पी सिंग ने मंडल आयोग लाने के बाद तो बाढ सी आ गई .आरक्षण के लिए छोटे जातीवाला बनने की होड लग गयी. जिनको आरक्षण नही है उनके बच्चे कितने भी होशियार हो आधे आधे मार्कस के लिए झगडनेवाले बच्चे क्या सोचते होगें? उनके पालक क्या सोचते होगें? नफरत और खाई बढती गयी. राजनितीज्ञो की बात करे तो उनको क्या पडी है? ऊन्हे तो अग्रेंजोका नियम था, फूट डालो राज करो, अमंल मे लाना है, राज करना है. जातीयों मे फूट डालो, लडाओ और मजा करो. कोई जरुरत नही थी सरकार को ॲट्रॉसिटी कानून मे संशोधन करने की, जिस से गलती से उच्च जातीवाला कुछ बोल दे और जेल मे जा बैठे. सरकार को लगा होगा, बहूत वाहवा होगी, शाबासी मिलेगी. ऐसा नही की, अंदर से मालूम नही हुआ हो फिर भी यही दंभ की सवर्ण आखिर जाएगें किधर?

मुझे याद नही है ओरिसा की कोई तो एक जाती को सरकार आरक्षण दे रही थी लेकिन ऊन्होने स्विकार नही किया था. शायद यह बात मंडल आयोग के समय की है. मंडल से जातीवाद का उन्माद भी बढा है. जब कभी जाती की शुरुवात हुई होगी, आज कम होने के बजाय राजनितीकारोने बढाने का ही महान कार्य किया और कर रहे है. राजनिती कभी भी लोगो कों एकत्रीत आने नही देगी, बढाएगी. उस मे सब पक्ष है ,कोइ कम जादा नही.
भारतीय राजनीति में कभी भी धर्म और जाति तब तक महत्वपूर्ण निर्णायक भूमिका नहीं निभाते जब तक स्वयं पब्लिक (आप और मैं) स्वयं किसी जाति एवं धर्म विशेष को श्रेष्ठ मानते हुए उस पार्टी को वोट करते हैं।

पर देखिए कहते हैं कि जाति कभी नहीं जाती! जो ना चाहते हुए भी कड़वा सच है। साथ ही एक महिला प्रत्याशी होना भी वोटरों को लुभावना लगता है क्यों? क्योंकि माना जाता है कि मूलतः महिलाएं स्वभाव से भावुक होती है और बिल्कुल वे जहाँ एक ओर कर्मनिष्ठ होती हैं वहीं दूसरी ओर समस्याओं का समाधान अपने आज्ञाकारी स्वभाव के कारण कर्तव्यनिष्ठ रहती हैं!

पर बिल्कुल इस बात या फिर कहूँ कि इस तथ्य को किसी भी तरह से एक बार को भी नकार नहीं सकते कि वोट बैंक जाति की राजनीति खेलकर वोटरों की भावनाओं के साथ खेलते हैं और भावनाओं में बहाना सबसे आसान तरीका है![14]

संदर्भ

1. ई. ए. एच. एंथोविन : द ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स ऑव् बांबे, बंबई 1920;
2. ई. थर्स्टन : कास्ट्स ऐंड ट्राइब्स ऑव् सदर्न इंडिया, मद्रास, 1909;
3. विलियम क्रुक : द ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स ऑव नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज ऐंड अवध, गवर्नमेंट प्रेस, कलकत्ता, 1896; *आर.बी. रसेल : ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स ऑव सेंट्रल प्राविंसेज ऑव इंडिया, मैकमिलन, लंदन, 1916;
4. एच.ए. रोज : ए ग्लासरी ऑव द ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स ऑव द पंजाब ऐंड नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज, लाहौर, 1911; *एच. एच. रिजले : ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स ऑव बंगाल - इथनोग्राफिक ग्लासरी, कलकत्ता, 1891;
5. जे. एम. भट्टाचार्य : हिंदू कास्ट्स ऐंड सेक्ट्स, कलकत्ता, 1896;
6. श्रीधर केतकर : द हिस्ट्री ऑव कास्ट इन इंडिया, न्यूयॉर्क, 1909;
7. एच. रिजले : द पीपुल ऑव इंडिया, द्वितीय सं., बंबई, 1915;
8. जी. एस. धुरिए कास्ट, क्लास ऐंड ऑकुपेशन, चतुर्थ सं. पापुलर बुक डिपो, बंबई 1961;
9. ई. ए. एच. ब्लंट : द कास्ट सिस्टम ऑव नार्दर्न इंडिया, लंदन 1931;
10. एम. एन. श्रीनिवास : कास्ट इन माडर्न इंडिया ऐंड अदर एजेज, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बंबई 1962;

11. जे. एच. हटन : कास्ट इन इंडिया, इटस नेचर, फंकशंस ऐंड ओरिजिंस, कैंब्रिज, 1946;
12. नर्मदेश्वरप्रसाद उपाध्याय : द मिथ ऑव द कास्ट सिस्टम, पटना, 1957;
13. क्षितिमोहन सेन : 'भारतवर्ष में जातिभेद' अभिनव भारतीय ग्रंथमाला, कलकत्ता, 1940;
14. डॉ॰ मंगलदेव शास्त्री: भारतीय संस्कृति - वैदिक धारा, समाजविज्ञान परिषद्, वाराणसी, 1955

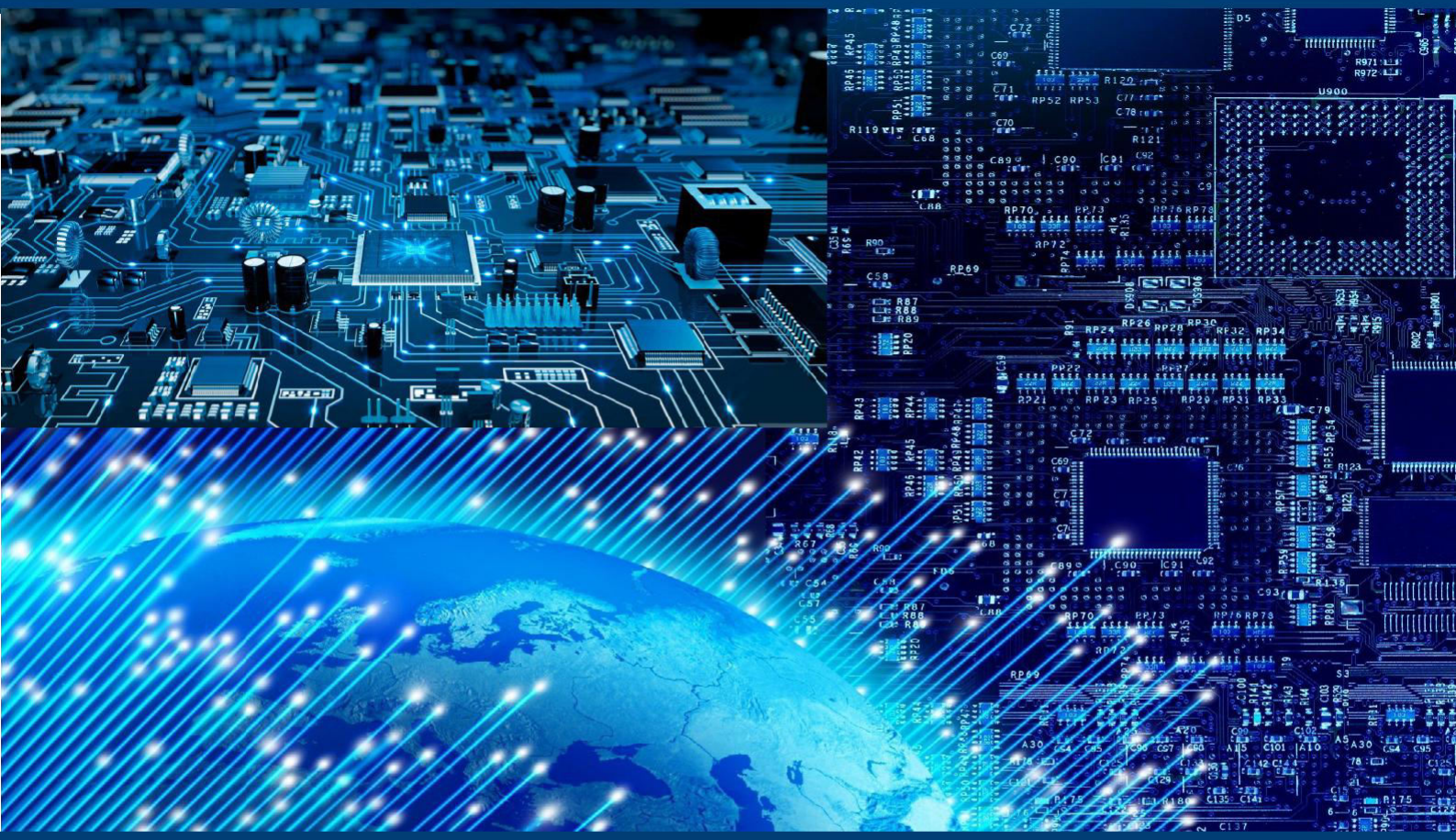

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| Mobile No: +91-9940572462 | Whatsapp: +91-9940572462 | ijarasem@gmail.com |